इकाई 19 जंगल के दावेदार : एक मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 महाश्वेता देवी की जीवन दृष्टि

19.3 पूर्व की उपन्यासिक धारा एवं महाश्वेता देवी

19.4 बांगला उपन्यासों के दिशा परिवर्तन में महाश्वेता देवी की भूमिका

19.5 जंगल के दावेदार : तात्कालीन राष्ट्रीय और सामाजिक परिस्थितियों का प्रतिबिंब

19.6 सारांश

19.7 प्रश्न

19.0 उद्देश्य

इस खंड की आखिरी इकाई में बताया गया है कि महाश्वेता देवी के उपन्यास सादेद्श्य हैं, प्रासंगिक है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगे कि

- उनके लेखन की दृष्टि क्या है और वे इस उपन्यास के माध्यम से क्या संदेश देना चाहती हैं;
- यह वर्णन का सकेंगे कि 'हजार चौरासी माँ' तथा 'जंगल के दावेदार' में उनकी जीवन दृष्टि क्या है;
- यह व्याख्या कर सकेंगे कि ऐतिहासिक कथासूत्र में वे वर्तमान युग सत्य का दर्शन कैसे करती हैं; और
- उनके कृतित्व का मूल्यांकन करते हुए उनकी मानवीय दृष्टि का विवेचन कर सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

महाश्वेता देवी से पूर्व के कथा साहित्य को एक आलोचक ने ' दिवालिया युग ' की संज्ञा दी थी, क्योंकि उस समय उपन्यास का उद्देश्य काफ़ी हद तक मनोरंजन करना या आदर्शवादी युग की कल्पना करना था। प्रारंभ में महाश्वेता देवी ने भी 'नटी' आदि उपन्यासों के माध्यम से ऐसे ग्राम समाज का चित्रण किया; सारे सुख, शांति एवं आशा के रंगों से मनोहारी दृश्य अंकित किये। "हज़ार चौरासी की माँ" से उनके लेखन में नया मोड़ आता है। यह वर्तमान युग की कथा है – अपने युग की वास्तविकता को जानने की जिज्ञासा की कहानी हैं। "बसाई टुडू" में वर्तमान राजनीति के मध्यवर्ग पर प्रभाव तथा जीवन संघर्ष का चित्रण है। इस तरह उनके परवर्ती उपन्यासों में काल्पनिक कथाओं का चित्रण नहीं हैं, वर्तमान भारत का जीता–जागता विश्लेषण है।

आगे के लेखन में दो नयी दिशाएँ – आदिवासी जनजीवन का चित्रण और जंगल के दावेदार में ऐतिहासिक घटना क्रम की व्याख्या इतिहास की ओर क्यों मुड़ गई, भले वह इतिहास आधुनिक ही क्यों न हो, लेखन की तिथि से सिर्फ़ 75-80 वर्ष पुराना इतिवृत्त क्यों न हो ? उनके अनुसार उपन्यास में इतिहास तत्त्व उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितनी राष्ट्रीय और सामाजिक परिस्थितियों की प्रासंगिकता।

1895 में आदिवासियों के अधिकार माँगने की प्रतिक्रिया स्वरूप ब्रिटिश शासन का दमनकारी चक्र चला, 1975 में, अस्सी वर्ष इतिहास अपने को दुहराता है और शासन तंत्र अधिकारों का हनन करते हुए अपना आधिपत्य स्थापित करता है। यह तुलना मात्र संयोग नहीं है, लेखिका इसके प्रति सचेत हैं। कहती हैं, "...... जो व्यवस्था (लोगों को गरीबी, शोषण आदि से) मुक्ति नहीं दे सकी, उसके विरुद्ध लगातार लगातार शुभ और सूर्य के समान रंगहीन क्रोध ही मेरे लेखन का प्रेरणा स्रोत है।"

19.2 महाश्वेता देवी की जीवन दृष्टि

बांगला उपन्यास की समसामयिक प्रवाहित धारा के बीच एक दशक से अत्यधिक समय गुजारने के बाद 1969 के बाद, विशेषकर 1974 में 'हजार चौरासी की माँ' उपन्यास के प्रकाशित होने के समय से महाश्वेता बांगला उपन्यास को भी दिशा बदल करने के लिए अनुप्रेणित करती हैं। इन विषयों में उनकी कुछ मूल सफलताओं को सूत्रविध करने पर कहना पड़ेगा :

i) गाँव और गाँव के जीवन को उसकी वास्तविकताओं, प्रत्यक्ष और द्वांद्विक चेहरों के साथ अपने उपन्यास आख्यानों में पकड़ने की भरपूर चेष्टा।

ii) उपन्यास में इतिहास को सिर्फ़ उपजीव्य बनाकर ही महाश्वेता रुकीं नहीं, राजनीति के प्रत्यक्ष सम्पर्क से इतिहास की व्याख्या करते हुए एक नये भाष्य को समृद्ध करती हैं।

iii) 'समय की ऐतिहासिकता'– इस शब्दबंधन को प्रथम बार व्यवहार करके उसी लेखनी में प्रयोग करके उसे अर्थ गंभीरता के उच्चतर सोपान तक पहुँचाती हैं।

iv) महाश्वेता देवी को बांगला उपन्यास में देश–समय–समाज की पृष्ठभूमि से मनुष्य की वास्तविक अवस्था को पहचानने का आग्रहन सदा उनके व्यक्ति हृदय के मर्मदहन को, अविकल उपास्थन के पथ के प्रथम पथिक के रूप में जाना जाता हैं।

अपने प्रारंभिक काल से लेकर वर्तमान काल तक बांगला उपन्यास मध्यमश्रेणी के द्वारा मध्यमश्रेणी के विशुद्ध मनोरंजन के लिए लिखे जा रहे थे। इस मध्यमवर्गीय देश–काल के साथ सामंजस्य रखकर उन्होंने अपने को परिवर्तित किया हैं। बंकिम–रवीन्द्र–शरच्चन्द्र जिनके उल्लेख' में विशिष्ट पदवी 'जमींदार' शब्द का व्यवहार किया जाता हैं, मानिक बंद्योपाध्याय के उपन्यास में आकर वही मध्यमवर्ग नौकरियों एवं व्यवसायों में डूब जाता हैं। ताराशंकर के उपन्यासों में जमींदार नाम रहने के बावजूद उनके अंदर से जमींदारी वैभव लुप्त हो जाते हैं। विभूतिभूषण की कहानियों में (पथेर–पंचाली, अपराजिता) उन मध्यवर्गों की अर्थहीनता ही गौरव का आभूषण और आत्मजीवन का अंश हो उठा हैं। यद्यपि अवस्था अनुसार उनको गरीब कहने पर भी लेखकों–पाठकों को कोई आपत्ति नहीं थी। शैलजानंद मुखोपाध्याय दिखलाते हैं कोयला खदानों के वास्तविक मध्यमवर्गीय जीवन रोमांस की अभिनव परिणति। मानिक का 'पुतुलनाचेर ईतिकथा' या 'पद्मानदीर माझि', सतीनाथ भादुड़ी का 'ढोड़ाई चरित्र मानस' या 'जागरी', समरेश वसु का 'विवर', 'पातक', 'मानुष' की भावनाओं के केन्द्र में सम्पूर्ण रूप से मध्यमश्रेणी के समाज निष्पेषण के दबाव ही तो ये सृजित करवाते हैं। महाश्वेता उन जगहों पर आख्यानों में मध्यवर्ग के सुख–दुःख के आनेवाले तत्वों का बिना उल्लेख किये जीरव उपेक्षा के द्वारा बांग्ला उपन्यास के सजीव प्रवाह के नये रास्ते का संधान करवाती हैं। अपनी लेखनी से उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया हैं कि बिना जोखिम उठाये, सावधानीपूर्वक जीवनयापन के अभ्यस्त मध्यवर्ग के जीवन का कोई अंतःसार नहीं हैं। इसलिए समय के परिप्रेक्ष्य में सदैव नवीनतम रूप मे बचे रहने वाले मनुष्य ही उनके साहित्य के उपजीव्य हैं ये छोटानागपुर अंचल के इलाके में इधर–उधर रहते हैं। यही नतमस्तक अपमानित काल–कालांतर से लांछित मनुष्य ही महाश्वेता को संवेदनशील लेखक के रूप में तब्दील कर देते हैं। इनके जीवन को लेखनी में तब्दील करना ही महाश्वेता के दायित्वबोध को मापने की काठी बन जाती है। 22.5.1999 को एक साक्षात्कार ('दैनिक

वर्तमान' पृ.–10, इंद्राणी दासगुप्त के साथ) में उनके मुख से ही यह जीवन दर्शन उच्चरित होता है–

"बातें बनाने से कुछ नहीं होता। काम करना पड़ता हैं, काम......हजारों सालों से जिन मनुष्यों का इतिहास रहा हैं, उन मनुष्यों को मत ठगिये।"

अध्यापिका सुमिता चक्रवर्ती लिखती हैं– "महाश्वेता ही सम्भवतः एक ऐसी उपन्यासकार हैं, जो बार–बार अपने को तोड़ती हैं और फिर अपने को गढ़ती हैं। राह चलते–चलते अपने को बदल देती हैं। अपना शिलपरूप भी किसी बाहरी दबाव से नहीं, किसी प्रतिष्ठान के दबाव से नहीं। सम्पूर्णतया अपने ह्रदय के ताप से अपनी संचेतन इच्छा एवं समस्त सृष्टि प्रवाह को ही उद्देश्यमूलक भावना के साथ; दायित्वबोध के साथ, जितना लिख सकते हैं, लिख कर चारों तरफ बिखेर देना चाहती हैं परिवर्तन या विप्लव के प्रति अपने विश्वास की दृढ़ता की बात महाश्वेता अपने 'अग्निगर्भ' नामक पुस्तक की भूमिका में जिस स्पष्टता से करती है, वह बांगला में विरल है: "मैं वर्तमान समाज व्यवस्था को बदलने की इच्छा रखती हूँ। केवलमात्र दलीय राजनीति में विश्वास नहीं करती हूँ, स्वाधीनता के 31 वर्ष में मैं अन्न, जल, जमीन, ऋण, बैठबेगारी इन किसी से भी मनुष्यों को मैंने मुक्त होते नहीं देखा हैं। जो व्यवस्था इस मुक्ति को नहीं दे पाई, उसके विरूद्ध निरंजन, शुभ और सूर्य के समान रंगहीन क्रोध ही मेरे सम्पूर्ण लेखनी की प्रेरणा हैं। दक्षिणपंथी–वामपंथी सभी दल ही साधारण मनुष्यों को दी गई प्रतिश्रुति का पालन करने में व्यर्थ रहे है, यह मेरा विश्वास हैं। मेरे जीवन काल में इस विश्वास को बदलने का कोई कारण मिलेगा इसकी मुझे आशा नहीं हैं। इसलिए साध्यरूप से मैं मनुष्यों की बातें ही लिखती चली गई, अपने स्वयं के सम्मुख लज्जा न पाऊँ इसलिए लेखक जीवन काल में ही शेष विचारों के पास पहुँच जाता है एवं उत्तर देने का दायित्व भी स्वयं का रह जाता हैं।"

महाश्वेता डेढ़ सौ सालों के बांगला उपन्यास के धाराप्रवाह की वह लेखिका हैं, जो उपन्यास को प्रत्यक्ष रूप से जनजीवन के आत्म परिचय के घोषणा–माध्यम के रूप में तब्दील कर देती हैं एवं वह भी एक ऐसे समय में, जब बांगला उपन्यास व्यक्ति के आत्ममग्न आत्मरति के कीचड़ में डूब–उतरा रहा था। महाश्वेता उसी अवस्था से बांगला उपन्यास को समाज का हाथ पकड़ाकर खड़ा करती है। सत्तर दशक की राजनैतिक जिज्ञासा, चैतन्य एवं दृष्टि लेकर महाश्वेता बांगला उपन्यास के पाठकों को याद दिला देती हैं–भारत के हज़ार–हज़ार वर्षों के जनजाति–जीवन के सामाजिक और लौकिक उत्स मुमूर्षु अवस्था के जीवन के सामने तृष्णा का पानी मिल सकता है और वह इस देश की मिट्टी को खोदकर ही लाना सम्भव है।

19.3 पूर्व की उपन्यासिक धारा एवं महाश्वेता देवी

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद के इन दो दशकों में समाज जीवन में हताशा से भरे श्वास और क्षय होते मूल्यबोध के युग में 1956 साल में बांगला साहित्य में महाश्वेता देवी का पदार्पण होता है, वह भी युग सापेक्ष रचना के साथ। उनके आविर्भाव का समय बांगला साहित्य में सबसे वाचाल युग के नाम से चिह्नित होता है। अध्यापक जगदीश भट्टाचार्य इस युग को दिवालिया युग के नाम से चिह्नित करते हैं। उनके शब्दों में........."युगलक्षण के हिसाब से और आदर्श के मापदंड से देखा जा सकता है कि इस युग से ज्यादा दिवालिया युग बांगला साहित्य के इतिहास में कभी नहीं देखने को मिला है।" इस दिवालिया और दिगभ्रष्ट साहित्य चर्चा के युग में महाश्वेता इतिहास के प्रति ज्यादा आग्रही होती हैं युग प्रवाह के कारण ही। वे लिखती हैं 'झांसिर रानी' इतिहास पर आख्यान और 'नटी' की तरह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित रम्य कल्पनामूलक स्केचधर्मी रोमांटिक उपन्यास और अपना स्थान बना लेती हैं समरेश बसु, विमल मित्र, रमापद चौधरी, गजेन्द्रनाथ मित्र, प्रेमनाथ विशी जैसे चर्चित लेखकों की मंडली में। उनकी तब बांगला साहित्य में एक मामूली गद्य लेखिका की हैसियत थी, जिनकी रचनाएँ मुख्य रूप से इतिहास पर आधारित रोमांस आख्यान होती थीं। जहाँ देखा जाता है–रूप समग्र नायिका ('नटी') में (खुदाबख्स और मोती का पहले साक्षात्कार की परिस्थितियों का वर्णन) प्रभु के प्रति प्राण समर्पित वीर सैनिक

('नटी' में गुलाम घौस खाँ–झाँसी राज्य का प्रधान सरदार), निसर्ग–मुग्धता का अतिरिक्त वाक्–विलास "अंचल की सीमा के बाहर यहाँ पलास, कैद, तेतुल और शिरीष गाछों का घना जंगल। शेष बसंत की अंतिम इच्छा को मूर्त रूप देकर खिल उठा है पलास, बनजुही के गाछ में गुच्छें फूल खिले है। उसके स्निग्ध गंध से सारा परिवेश मादक हो उठा है। शुक्लपक्ष के चाँद के शेष दिन खत्म हो चुके हैं, दिन में भी यहाँ अब कोई नहीं आता है।" ('नटी', महाश्वेता देवी रचना समग्र, पृ. 220।) सिर्फ़ निसर्ग आवेश नहीं, बल्कि देखा जाता है चलचित्र की तरह क्षमतामूलक और प्रवाहमय वर्णन निपुणता। महाश्वेता की इस समय की मुख्य विशेषता है अतीत के कैनवस पर विस्तृतपूर्ण इतिहास का चित्र आँकना। अवश्य ही बंगाल से दूर दूसरे के प्रति भूखण्ड के इतिहास का संधान, विगत 4 - 5 सौ वर्षों का राजशासन तथा सामंत सभ्यता के स्थापत्य चिह्नों से भरपूर राजपूताना ही महाश्वेता के इतिहास आख्यानों के प्रथम पसंदीदा क्षेत्र बने। यद्यपि राजपुतानी के प्रेमावेग के वर्णन में बंगाली भावविह्वलता की तरलता को देखा जा सकता है। (" शोकावेग से उसके कंठ का पर्दा–पर्दा उठने लगा– मैं उसके लिए सब कुछ छोड़ सकती थी, उसके साथ संसार का निर्माण कर सकती थी, उसको बाँध कर रख सकती यदि वह मुझे अपना कर रखता तो। किन्तु तुम्हारी बात सत्य मान कर मैं नहीं गई। नटी समझ कर वह मुझे गाली देकर चला गया और तुम ने नटी समझकर मेरा अपमान कर दिया। तुम लोगों में कोई मेरा मन नहीं समझ सका। हृदय नहीं देख सका–मेरा सारा–परिचय सब कुछ बह गया। और तुम लोग खाटि हो।...मैं नटी। मैं प्रेम करना नहीं जानती। मैं बेईमान जो ठहरी। बे–ईमान !" पृ.– 236, नटी)।
साहित्यिक जीवन के इस प्रथम पर्व में महाश्वेता सतत जो चित्र बनाने में मग्न थीं, वह है– एक ऐसा ग्राम समाज जहाँ 'सारे सुख' शांति एवं आशा के रंगों से बना मनोहारी दृश्य हो। (नटी– पृ.– 242) तब भी इसके मध्य वास्तववादी श्रेणिबोध, कालचेतना इत्यादि की विद्युत चमक भविष्य की महत्वपूर्ण लेखिका के पूर्वाभास को ज्ञापित करती हैं–

i) मखमल के तकिये पर शरीर का भार डालकर प्रांतीय सामंततंत्र यौवन विश्राम करता है....(पृ.– 185)

ii) उन्नीसवीं शताब्दी का बाल्यकाल। अन्तरंगमहल मर्म कोठरी, शयनक में नारियों को सिर्फ प्रिया बनकर बचे रहने का अधिकार दिया है सामततंत्र ने। सुन्दरी रमणी होगी प्रिया एवं उनके वंशधर को लानेवाली विवाहिता पत्नी होगी जननी। (पृ.– 191)

iii) 'उसकी कटु उक्ति से सामंततंत्र की इज्ज़त में दाग लग गया था, जिससे ब्रिटिश सिंह के प्रतिनिधि क्रोधित हो उठे थे।"

1959 में महाश्वेता के प्रकाशित उपन्यास 'तिमिर लगन' में भी मुख्य रूप से प्रेम के तीव्र रोमांटिक आवेग से उत्प्लावित एक युगल जोड़े का चित्रण मिलता है। 'प्रेम–अंतरंगता' की उत्तेजक और मन को जानने की छोटी–छोटी महत्वपूर्ण बातों से बुनी गई कहानियाँ महाश्वेता के इसी खण्ड के जीवन की उपलब्धि जैसी लगती हैं। ये सभी प्रेम की कहानियाँ कलकत्ता के अभिजात इलाके के 'बड़ी दिवालों के अन्दर स्थित महलों के भीतर' बृंदावन का निर्माण करती है। देश–काल–पृथ्वी की खबरें इन महलों की दीवारों से टकरा कर रुक जाती हैं– वे आधारहीन कारणों से ही प्रेम में पड़ती हैं ("साथ–साथ चलते हुए वासवी चुपके से निशीथ को देखती है– आकर्षक चेहरा, कृष्ण की तरह गौरवपूर्ण, श्यामवर्ण रंग और एकदम काली भ्रकुटि। होंठ एकदम पतले। एकदम सीधा दो लाइन की तरह। सब मिलाकर निशीथ में एक ऐसा आकर्षण है, जो शुरू से ही वासवी को चुम्बक की तरह अपनी तरफ खींचता रहता है।"..... "उस दिन के आकस्मिक परिचय के बाद से ही वासवी को लगने लगा कि इस मनुष्य के साथ उसका जीवन कहीं बँधा हुआ है। (पृ. 26–27) लड़कियों की शादी में अत्यधिक अर्थव्यय करने वाले परिवार में प्रेम अथवा शादी में लड़के–लड़कियों का शारीरिक और मानसिक मिलन नहीं हो पाता– सत्ता की अकाल मृत्यु को लेकर शारीरिक अस्तित्व बचा रहता है, अविवाहित युवतियाँ बिना किसी आग्रह के सिर्फ़ अभ्यासवश पियानो सीखने जाती हैं, अकस्मात उच्च विलायती सामग्री का त्याग करके स्वदेशी होने की साधना में अपने को डुबा देते हुए पात्र, कालीघाट के घट, ढकाई साड़ी, सवतालों की बेंतों से निर्मित झुड़ियाँ, असली विष्णुपुरी चटाई, तात की असली फरासीडांगा साड़ी इत्यादि के ये पृष्ठपोषक

अथवा स्वच्छंद क्रेता के रूप में उभरे। इसी के अन्दर से शून्य और बाहर से मज़बूत दिखने वाले बंगाली उच्चवर्ग समाज का आख्यान ही साठवें दशक के मध्यभाग तक महाश्वेता लिखती रहीं। इनके नीरस हो चुके जीवन की निष्प्राणता के संबंध में सम्यक् जानकारी रहने के बावजूद, काल प्रवाह में बंध कर इनकी ही कहानी महाश्वेता को लिखनी पड़ी; क्योंकि मध्यवर्ग के अतिरिक्त निम्नवर्ग के गरीब श्रमिक, मजदूर, कृषक, बस्ती एवं कालोनी में रहनेवाली मुठियों–मजदूरों का जीवन साहित्य के लिए उपजीव्य बन पाये इस तरह की कोई सामाजिक परिस्थिति ही उस वक्त नहीं थी। जो आदिवासी उपजाति भविष्य में महाश्वेता के आख्यानों को दखल कर लेती है, यही उपजाति उस समय बंगाली मध्यवर्ग के जीवन के विभिन्न भाष्यकारों के द्वारा जिस तरह चित्रित ओर वर्णित होती थी, उसी तरह महाश्वेता के लेखनी में भी रम्य वर्णन हैं–

> "शेखपूरा के भू–अंचल के सीने को चिरकर एक लालकंकड़–पत्थर का रास्ता निकल रहा है। काले–काले मनुष्य, स्त्री–पुरूष मिलकर कुदाल गैती और शावल लेकर तेजी से हाथ चला रहे हैं। बारह आना–आठ के रोज़ी से सम्भव बना डालते हैं एक स्वप्न। अभी भी उन्हें इस रास्ते का प्रयोजन नहीं था। गृहांगन में स्वपालित मुरगी–हंस के अण्डे और साग–सब्जियों की सामान्य पूंजी लेकर विसर्पी–धूल में विलीन पतली पगडंडी से वे बाज़ार आ–जा सकते थे।" (पृ.– 109)

"दो सवताल नौकरानी लड़कियाँ उनके घर में काम करती हैं।......दोनों नौकरानियाँ गीत–गाते हुए काम करती हैं। कामों के भीतर कैसे वे आनंद को खोज लेती हैं।" (पृ.–112)

19.4 बांगला उपन्यासों के दिशा परिवर्तन में महाश्वेता देवी की भूमिका

1960 वे दशक के उत्तरार्द्ध में पश्चिम बंगाल की सामाजिक और आर्थिक धारा में तीव्र गति से परिवर्तन घटित हो रहा था। 1966 के फ़रवरी महीने में इस राज्य में खाद्याभाव से जन्मा असंतोष राजनैतिक आंदोलन के रूप में परिणत हो चुका था। इसके होने के पूर्व से ही पूरे भारत में खाद्य का अभाव विद्यमान था। नयी प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी अपने शपथ लेने के पांच दिन बाद ही अपने पहले बेतार भाषण में 28.1.1966 को जनता को संबोधित करती हैं – "सभी के भोजन की व्यवस्था करना ही सरकार का प्रमुख कार्य है एवं इसके लिए पर्याप्त मात्रा में खाद्य सामग्री की आमदनी करने की कार्ययोजना बनायी गयी है।" किन्तु पश्चिम बंगाल के निवासियों के खाद्याभाव को शासक पूरा नहीं कर पाये। 17 फरवरी को खाद्य आंदोलनकारियों के ऊपर चौबीस परगना के स्वरूपनगर में पुलिस ने गोली चलायी, जिसमें पांचवीं कक्षा की एक छात्रा की मृत्यु हो जाती है। परवर्ती समय में ये विरोध तीव्रतर होते जा रहे थे, उसी अनुपात में दमन और उत्पीड़न भी बढ़ते जा रहे थे। उसी अस्थिरता और विकट परिस्थिति में पश्चिम बंगाल का विधानसभा चुनाव एक नयी दिशा की तरफ मुड़ गया। दीर्घ दो दशकों के शासक पराजित हो गये। नयी संयुक्त सरकार प्रतिष्ठित होती है 2 मार्च 1967 में। मात्र इसके तीन महीने बाद ही नक्सलबाड़ी में पुलिस और कृषकों के बीच संघर्ष की घटना घटी। राज्य के बृहत्तर वामपंथी दल में फूट पड़ गयी। क्षमताच्युत दल विभिन्न तरह से संयुक्त मोर्चे को हटाने की कोशिश करने लगा, एवं अन्त में सरकार भंग कर दी गई। फिर 1969 में संयुक्त मोर्चा सत्ता में आया। इस साल नये टूट हुए दल ने अपने को नक्सलपंथी के रूप में घोषित किया। वे निर्वाचन या नियमतांत्रिक आंदोलन के पथ को अस्वीकार करके क्रांति करने का आह्वान करते हैं। व्यक्ति हत्या, गाँव दखल कर मुक्ताचल क्षेत्र तैयार करना, मनीषियों की मूर्तियों को तोड़ना इत्यादि गतिविधियाँ क्रांति की साधना में चलती रहीं। राष्ट्र उनके इस विद्रोह दमन में क्रमशः निर्मम होता चला गया। इसी निर्ममता की बलि अधिकांश युवक और किशोर हुए और इन क्रांतिकारियों की साधना में विघ्न डालने के कारण कुछ पुलिसवाले, समपथिक किन्तु विभिन्न कर्म धारा के राजनैतिक दलों के कार्यकर्ता और कुछ नेता समर्थक लोग भी मारे गए। वास्तव में 1969 से पश्चिम बंगाल गृहयुद्ध का एक मंच बन गया था। बलिष्ठ शासनतंत्र इस नक्सलपंथ का जिस तरह से दमन कर रहा था, उससे जनता में भय की

लहर व्याप्त हो गई। अत्यधिक रक्तों को नष्ट करके ही 1972 में इस राज्य में श्मशानी शांति कायम हो सकी।

समकालीन इस राजनैतिक परिवेश–परिस्थिति में महाश्वेता देवी के साहित्यदर्शन में भी परिवर्तन हुआ। वे खुद 1976 में 'देश' पत्रिका में (साहित्य संख्या, पृ. 90) 'आमि/आमार लेखा' (मैं मेरी लेखनी) शीर्षक आत्मकथा में बतलाती हैं– "70 दशक में साहित्यकारों एवं बंगाल के बुद्धिजीवियों के मानसिक नपुंसकता और अंधकार के अवक्षय का सबसे भयानक चेहरा मैं देख पाई। जहाँ देश और मनुष्य रक्ताक्त अभिज्ञता में जूझ रहे थे, वहीं बांगला साहित्य एक बड़े गंभीर दर्द–दुःख को छोड़कर परी देश के अलौकिक स्वप्न बाग में मिथ्या फूल खिलाने का 'व्यर्थ' आत्मघाती खेल में व्यस्त रह गया। ऐसा क्यों हुआ, इसका विश्लेषण के क्षेत्र में भी संकट में तब्दील हो जाता हैं। इस संकट के समय में जिस तरह लेखकों का एक दल पीछे की तरफ बालू के टीले में मुँह घुसाकर इस समय को टालना चाह रहे थे। उसी तरह एक दल जीवन की पीड़ा, वंचना और ग्लानि को वास्तविक रूप देने में व्यस्त थे। महाश्वेता दूसरी श्रेणी में खड़ी हो गई, अपनी स्वतंत्रता को बचाते हुए। वे अपने को लिये जा रही थीं लांछित मानवता के पास। सत्यजिज्ञासा के रास्ते में लगातार अनुसंधान उनको पहुँचा रहा था भारतीय जनजीवन के अस्थि–मंज्जा से ढके ह्रदय केन्द्र के पास। वे तब्दील हुए जा रही थीं। नक्सलदर्दी, आदिवासी हमदर्द, सामंततंत्र के मृत्यु कामनाकारी एक खाटि मानवदर्दी साहित्यकार में। 1969 में 'वायेन' कहानी में भागीरथी के जीवन–जिज्ञासा के बीच से ही उनकी इस नयी सत्ता का (जीवन) उन्मेष होता हैं। इस कहानी की अतियथार्थता वास्तव में स्वाधीन भारत के सामाजिक अंधकार और क्लेशकारिता में डूबे समाज का चित्रण करती हैं–"....भागीरथी जान गया था कि 1955 के अछूत कानून के चलते अब उनमें से कोई अछूत नहीं रह गया था, जान गया था कि भारतीय नाम की एक वस्तु हैं; जिसके प्रथम में ही मौलिक अधिकार की बात स्पष्ट रूप से लिखी हुई हैं कि वे सभी समान हैं।"

प्रसिद्ध आलोचक ईरावान बसुराय लिखते हैं–".....सत्तर दशक के उपन्यासों में सबसे महत्वपूर्ण घटना घटी अन्य तरीके से। राजनीति के साथ प्रत्यक्ष रूप से न जुड़े होने के बावजूद, इस प्रबल जन आंदोलन को अनुभव करके, उसको एक रूप देने की दिशा में बढ़ते हुए, एक ही साथ मध्यम वर्गीय जीवन और अपने उपन्यासों को तोड़ने और तोड़ के नये रूप में गढ़ने वाला सिर्फ़ एक ही उपन्यासकार सामने आता है–महाश्वेता देवी।

'हज़ार चौरासी की माँ' से महाश्वेता की नयी यात्रा शुरू हुई। हज़ार चौरासी की माँ... उपन्यास भी नक्सलबाड़ी आंदोलन के आपात व्यर्थता की पृष्ठभूमि पर ही आधारित है। किंतु महाश्वेता की नायिका की यात्रा दूसरी तरफ़ है, नक्सलपंथी व्रती नहीं, बल्कि इस उपन्यास के मूल चरित्र व्रती की माँ सुजाता। सत्तर के दशक में अनेक माताओं को अपनी संतान के खो जाने की जिस यंत्रणा को सहन करना पड़ा था, सुजाता उनमे से एक है। वर्ती की मृत्यु के बाद सुजाता उन लोगों के स्वप्न और उनकी कल्पना को स्पर्श करना चाहती है। इसलिए उसे अपने स्वामी, पुत्री और अन्य से दूर होना पड़ता है–इनके मध्यमवर्गीय आत्मतृप्ति के जीवन से। यह दूर होना ही बांगला उपन्यासों में बहुत महत्वपूर्ण हो उठता है। महाश्वेता भी दूर हो उठी इस जगत से। सुजाता की तरह वह भी व्रतियों को जानने की कोशिश करने लगी। महाश्वेता के उपन्यास दूर होने लगे मध्यमवर्गीय स्वअर्जित विश्वास और भावनाओं की सीमाओं से। वे हजार चौरासी की माँ से "आपरेशन बसाई टुडू "तक आ पहुँचीं।

बसाई टुडू नक्सलपंथी नहीं है, नक्सलपंथी जो भूल करते थे, उन भूलों को करने के लिए राज़ी नहीं हुआ। नक्सलपंथियों से वह श्रद्धा करता था, क्योंकि इस तरह वह दूसरों को मरते देख नहीं सका था, सिर्फ़ यही नहीं.....आपरेशन बसाई टुडू पकड़ लेती है, मध्यमवर्गीय चरित्र का एक और रूप उसकी द्विधा, आगे–पिछे हटना और सत्यता की ताना–तानी, जिसके फलस्वरूप काली महतो हमारे ही रक्तक्षरण की यंत्रणा को भाषा देता है। 'एम. डबल्यू. और लखिन्द' उपन्यास में खेतिहर–मज़दूरों के प्रसंग को ही और थोड़ा बड़ा करके हमारे सामने लाती है....। इसी खेतिहर–मज़दूर, भूमिहीन कृषकों के समस्याओं

से महाश्वेता पहुँच जाती है, ग्रामीण भारतवर्ष के सामंततंत्र की और एक गंभीर समस्या–आदिवासी और हरिजन समस्या के बीच।

इस प्रसंग की शुरुआत महाश्वेता ने की थी–इतिहास के परिक्रमा के बीच से। .... राजनीति के प्रत्यक्ष साक्षात्कार से इतिहास का व्याख्या करना, उसके प्रकाश में रास्ता ढूँढ़ना– इसी उद्देश्य के लिए स्वर्णमित्र (उत्पलेन्दु चक्रवर्ती) ने लिखी थी सवताल विद्रोह की कहानी, कानू–सिधू की कहानी, दामिन–ई– की की कहानी। उसी तरह महाश्वेता उठा कर लायीं बिरसा मुंडा की लड़ाई की कहानी–'अरण्येर अधिकार' (जंगल के दावेदार) में। बिरसा लड़े थे साम्राज्यवाद के विरुद्ध, निपीड़ित दरिद्र मुंडाओं के सामने बिरसा ने मुक्ति के स्वप्न को ला खड़ा कर दिया था। बिरसा को मरना पड़ा था, किन्तु इससे तो लड़ाई नहीं रुकी। महाश्वेता इतिहास की इसी धारा का अनुसरण करके पहुँच जाती हैं–'जगमोहन की मृत्यु' कहानी में पलामौ अंचल के निम्नवर्गीय सम्पदाहीन आदिवासी मनुष्य के वर्णन में, विचित्र हो उठता है, सामंततंत्र का गन्दा बिजबिजाता चेहरा। 'जगमोहन की मृत्यु' 'सरस्वतियाँ', 'श्री श्री गणेश महिमा'–ये सभी उपन्यास छोटानागपुर की पृष्ठभूमि पर आधारित हैं...... इनमें सामंततंत्र कितनी तरह से समाज को प्रभावित करने का कार्य करता है और कितने विचित्र होते हैं उसके हथियार यही दिखाने का प्रयास किया गया है। महाश्वेता एक – एक कर उन सभी परिचयों को पकड़ लाती हैं इन उपन्यासों में।"

19.5 जंगल के दावेदार : तात्कालीन राष्ट्रीय और सामाजिक परिस्थितियों का प्रतिबिंब

1975 में धारावाहिक रूप से 'बेतार जगत' पत्रिका में 'अरण्येर अधिकार '(जंगल के दावेदार) प्रकाशित होना शुरू हुआ। 1977 के अप्रैल महीने में पुरस्कार रूप में यह छपकर आया। भारतीय इतिहास, समाज और राजनीति में 1975 का समय चिरकाल तक स्मरणीय बना हुआ है। इसी समय यह उपन्यास छप कर आया। इसी साल 25 जून को मध्यरात्रि के समय भारत में आपातकाल की घोषणा की जाती है। प्रायः इसके एक साल पहले से ही भारतीय शासक दल जनता में व्याप्त असंतोष का दमन करने की प्रक्रिया को तीव्र कर रहे थे। हमलोग 'जंगल के दावेदार' समझने–बूझने के लिये ही उस समय की तात्कालिन भारतीय परिस्थितियों (1975-77) की आलोचना कर रहे हैं। प्रतिष्ठान, व्यक्ति या गोष्ठी के मूल्यांकन के लिए नहीं। इसीलिए परिचित राजनैतिक दल या व्यक्तियों के उल्लेख योग्य क्षेत्रों में व्यक्तियों एवं उनके दलों को गौण रूप में ही देखना होगा। मुख्य विवेचन यह करना है कि उनके कार्यक्रमों के फलस्वरूप बस्ती के जनजीवन में किस तरह का परिवर्तन घटित हुआ था। उन परिवर्तनों का सूक्ष्म और स्थूल परिणाम क्या हुआ इत्यादि।

8 मई 1974 में पूरे भारत में रेल धर्मघट अभियान शुरू हुआ। 20 दिन के बाद 28 मई को यह अभियान समाप्त हुआ था। किन्तु इस अभूतपूर्व राष्ट्रविरोधी जनाक्रोश के दमन के लिये जनता के ऊपर अत्याचार हुऐ, लोगों की गिरफ्तारी हुई और उन्हें पीड़ित किया गया रेल धर्मघट शुरू होने के पहले 2 मई को इसके आह्वाहक जॉर्ज फर्नान्डीज गिरफ्तार होते हैं। सारे देश में सात सौ से अधिक रेल कर्मचारी गिरफ्तार होते हैं। इस अभियान के असफल हो जाने के बावजूद राष्ट्रविरोधी जन असंतोष विभिन्न रूपों के माध्यम से हमारे सामने आता रहता है। इन परिस्थितियों में विश्व के सभी शासक अपने स्वविवेक बुद्धि को खो देते हैं। भारत में भी 'मिसा' (Maintance of internal security act) कानून स्वेच्छाचार रूप से प्रयोग किया जाने लगा। 24 सितम्बर को बिहार के मोतीहारी जेल गेट से 'मिसा' कानून के अन्तर्गत 'जनसंघ' के नेता अटल बिहारी वाजपेयी को गिरफ्तार किया गया। इस वक्त जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में बिहार में तीव्र जन आंदोलन चल रहा था। 3 अक्टूबर से वहां लगातार राज्य व्यापी हड़ताल शुरू हुई। 21 अक्टूबर से जन आंदोलन के दमन के लिए पटना ज़िले में धारा 144 लागू की गई। डी. आई. आर० के द्वारा 369 लोगों को बन्दी बनाया गया। 16 नवम्बर को राष्ट्रपति फ़खरुद्दीन अली अहमद ने संविधान की धारा 369 के अनुसार एक

आदेश जारी किया– इस आदेश के अनुसार 'मिसा' कानून 3(1) के अन्तर्गत पकड़ा गया कोई भी व्यक्ति अदालत के द्वारा अपनी जमानत नहीं करा सकता। इस समय गणतंत्र और मानवाधिकार के ऊपर दमन–पीड़न और लांछन इस स्तर तक चला जाता है कि इसके प्रतिवाद में 18 नवम्बर को पटना में जयप्रकाश नारायण की एक जनसभा में हिंदी साहित्यकार नागार्जुन एवं फणीश्वर नाथ रेणु सरकार द्वारा दिये जा रहे 300 रु. की पेंशन को अस्वीकार करने की घोषणा करते हैं।

25 जून 1975 को मध्य रात में देश में आपातकाल की घोषणा की जाती है। इसके फलस्वरूप 'मिसा' कानून के 16 (क) धारा के अन्तर्गत 34630 लोगों को गिरफ्तार किया जाता है। साधारण 'मिसा' कानून के अन्तर्गत 6244 लोगों को गिरफ्तार किया जाता है। उनमें से 5009 लोग पश्चिम बंगाल के निवासी हैं। यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि महाश्वेता देवी भी पश्चिम बंगाल की निवासी हैं एवं उस वक्त वे 'जंगल के दावेदार' को लिख रही थीं। जिस उपन्यास में 76 वर्ष पहले (1899-1900) के अंग्रेज शासक द्वारा शक्ति के अनुरूप पीड़न और बन्दी करने के तथा बिरसा मुंडा के नेतृत्व में चलनेवाले जन आंदोलन के विद्रोह एवं दमन की कहानी कह रही हैं। उनके उपन्यास में वर्णित परिवेश में देश–काल का प्रत्यक्ष प्रभाव रहना कोई बड़ी बात नहीं है। उपन्यास की भूमिका में स्वयं महाश्वेता देवी लिखती हैं– "भारतवर्ष के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में बिरसा मुंडा का नाम और विद्रोह अनेक दृष्टियों से स्मरणीय और सार्थक है। इस देश की सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि में इसका अभ्युत्थान केवल एक विदेशी सरकार और इसके शोषण के विरूद्ध था।.........लेखक के रूप में, समकालीन मनुष्य के रूप में एक वस्तुवादी ऐतिहासिक दोष का समस्त दायित्व वहन करने में हम सदा ही प्रतिश्रुत हैं। स्वीकार करने का अपराध समाज कभी क्षमा नहीं करेगा। मेरा बिरसा केन्द्रित उपन्यास उसी प्रतिश्रुति का ही परिणाम है।"

राष्ट्र में शासन करते वक्त शासक कृतपक्ष एकदम क्षमा की प्रतिमूर्ति होने से नहीं चलता है, आराम शृंखला भंग करनेवाले या उसके तीव्र विरोधी को गिरफ्तार करना ही पड़ता है। किंतु 1975 में भारत–प्रशासन शासक के शासनाधिकार की रक्षा करने के लिए सारे नियम–कानून को अमान्य करके ढेर सारे स्वेच्छाचारी और स्वेराचारी (निरंकुश) नियम–कानून बनाये गये थे। सबसे ऊपर जेल एवं हवालातों में बन्द राजनैतिक बंदियों के ऊपर अमानवीय अत्याचारों की बाढ़ आ गई थी। अत्याचारों से पीड़ित होकर मरने वालों को 'जेलकर्मियों के साथ कैदियों के खूनी संघर्ष' की कहानी बनाकर इन हत्याओं को जायज़ ठहराने का रिवाज चालू कर दिया गया। 1975 में पश्चिम बंगाल की तरफ ध्यान से देखने से पता चलता है कि 3 मई को हावड़ा जेल में बंदी विचाराधीन नक्सलपंथी कैदियों के ऊपर जेल वार्डन द्वारा चलायी गयी गोली में 5 नक्सलपंथी कैदियों की मृत्यु होती है। पूर्ववर्ती 1970 से 1973–74 के समय में झांकने से पता चलता है कि पश्चिम बंगाल में 11 और बिहार में 4 जेलों में पुलिस और राजनैतिक बंदियों के बीच संघर्ष की कहानी के प्रचार के माध्यम द्वारा ही 1970 के दशक के राष्ट्रीय प्रशासन के अत्याचार को ढककर नहीं रखा गया बल्कि पश्चिम बंगाल में इस समय पुलिस प्रशासन द्वारा अपने इन अत्याचारों को क्रांति पताका के रूप में लहराने के बावजूद भावी समय में ये सारी सत्य घटनाएँ जनता के समक्ष उन्मोचित हो उठीं। 18 जुलाई 1974 को अर्चना गुहा नामक एक युवती को लालबजार (पश्चिमी, पुलिस हेड़ क्वाटर्स) में पकड़ कर ले जाया गया जहाँ 27 दिनों तक उसके साथ पशुतुल्य अत्याचार किया गया। सिर्फ एक नक्सलपंथी व्यक्ति के साथ उसके आत्मीय लगाव की खबर को आधार बनाकर कारावास से मुक्ति के बाद अर्चना अदालत की शरण में जाती है। जहाँ दीर्घ दो दशक तक मुकदमा चलने के बाद, इस मामले में राय देने के प्रसंग में 7 वें कलकत्ता मेट्रोपोलिटन मैजिस्ट्रेट सूर्येन्दु विश्वास जो राय देते हैं, उसका अंश–विशेष इस समय की राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य की आबो–हवा को बूझने के लिए बहुत ही प्रासंगिक हो उठा है। 9.6.1999 में कोलकाता से प्रकाशित 'The Telegraph' दैनिक के एक प्रतिवेदन में लिखा जाता है : "Justice Biswas, while delivering his judgment, put the times of arcane ordeal in perspective at a time when the condition of the judiciary and the legal system were ineffective due to the horror and terror prevailing. Even in the post-emergency period an unsympathetic judiciary had dismissed several complaints against torture by police officers on grounds of weak or insufficient evidence."

भारत एवं पश्चिम बंगाल के इस गहन अंधकार के समय में ही महाश्वेता ने "जंगल के दावेदार" लिखा है। बांगलादेश के प्रसिद्ध उपन्यासकार उसमान ने पूर्व पाकिस्तान के ऊपर पश्चिमी पाकिस्तान के नृशंस शासक याहिया खान के अत्याचार और द्वंद्व के आधार को विश्लेषित करके 'कृतदासेर हाँसी' नामक एक उपन्यास की रचना की। उपन्यास की मूल कथा वस्तु थी मनुष्य की व्यक्ति स्वाधीनता सब समय सभी कालों में शासकों की शक्ति और अर्थों के वशीभूत नहीं रही है। खलीफ़ा के सभी जुल्मों को वह खरीदा गया गुलाम व्यर्थ कर देता है, क्योंकि खलीफ़ा की प्रधान बेगम जुबैदा की बाँदी मेहरूजान के साथ गंभीर रात के एकांत मिलन के समय यह गुलाम जो हँसी हँसता है, (छिपी हुई इस हँसी को कई दिन ढूँढ़ने के बाद खलीफ़ा को जिसका उत्स दिखलाई पड़ा) वही हँसी खलिफ़ा के बार--बार दिये गये आदेशों के बावजूद वह तातारी गुलाम पुनरावृत्त करने को तैयार नहीं होता है। समस्त जगत के अधीश्वर खलीफ़ा के समक्ष इस तरह की दुस्साहसिकता दिखलाने के साहस के माध्यम से लेखक ने असल में अपनी लेखनी द्वारा पश्चिमी सामरिक शासक के विरोध में पूर्व पाकिस्तान के मनुष्यों की साहसपूर्ण प्रतिरोधी मानसिकता को ही पूर्ण रूप से चित्रित किया है।। मूर्ख सामरिक शासकपक्ष ढेर सारी किताबों को निषिद्ध करने के बावजूद, 'कृतदासेर हाँसी' उपन्यास के मर्म को बूझ नहीं पाया है। इसलिए शासन के भीतिकर समय में भी यह प्रतिवादी उपन्यास प्रचारित होता है।

'जंगल के दावेदार' के पूर्व महाश्वेता देवी 'हजार चौरासी की माँ' के सम्बंध में जो लिखती हैं, वह भी स्मरणीय बन पड़ा है, क्योंकि उससे हम समसामयिक देश--काल की परिस्थितियों को समझ सकते हैं कि किस तरह वे परिस्थितियाँ महाश्वेता की लेखनी को प्रभावित करती हैं। 'हजार चौरासी की माँ' को लेकर 'मुम्बई में 6 दिन 6 घंटा' शीर्षक निबंध (दैनिक 'आजकल'-- 11.1.1998, रविवार, पृ. क) में महाश्वेता देवी लिखती हैं : किताब (हजार चौरासी की माँ) की उस समय लोकप्रियता के अन्य कारण थे। वह समय युवकों के लाल खून से, लार्ड सिन्हा रोड के सेल में सरोजपाल (अर्थात रूनु गुहनियेगी लोगी) जैसे विशिष्ट हृदयहीन पुलिस अत्याचारियों, श्री कालोनी--बारासात--कोन्नगर--बारानगर--काशिपुर इत्यादि जगहों में पुलिस द्वारा गणहत्या, जेलों में लगातार एक के बाद एक करके गोली चलाना। इसे लेकर लिखा जाना चाहिए..... उस समय ने मुझसे यह किताब लिखवायी है।.............अपने लिखे हुए विषय के लिए अभी भी क्षमाहीन बनी रहती हूँ.......वह किताब नक्सलवादियों के समक्ष मुझे विश्वासयोग्य बना डालती है, एवं 'जंगल के दावेदार' पर अकादमी पुरस्कार पाकर मुझे आदिवासियों के और नज़दीक ला खड़ा कर देती है।"

नियत विवेक दहन से पीड़ित वास्तविकता ही महाश्वेता के साहित्य की प्रेरणा है। 'जंगल के दावेदार' (1977) किताब के रूप में प्रकाशित होने के बाद वाले साल ही प्रकाशित 'अग्निगर्भ' कहानी संग्रह की भूमिका में महाश्वेता के उसी का परिचय मिल सकता है। वे लिखती हैं-- "गाँव में रहनेवाले भारत का चेहरा श्मशान के सदृश है। सूखा एवं ग्रीष्म में आदिवासी और अन्यान्य तथाकथित अ--वर्ण हिन्दू जाति सूखी हुई नदी के सीने को चीरकर पानी खोजती है, माड़ तक की बिक्री होती है, पलामौ के आदिवासी चीना घास के बीज को छोड़कर प्रायः और कोई खाद्य पाते ही नहीं हैं.....स्वाधीनता के बाद इस देश में जो अर्थनैतिक अग्रगति घटी है, उसका फल भोगी मध्यश्रेणी के श्रमिक और खेतिहर मज़दूर नहीं हुए हैं। एक तरफ़ धनिक श्रेणी और बड़ी हुई, आत्ममग्न एवं आत्मतृप्त अशिक्षित, बर्बर नवीन धनिक। दूसरी तरफ़ साधारण मध्यश्रेणी व्यक्ति सामान्य जीवन के सम्बल को खोकर और दरिद्र हो गये, निम्नवर्ग श्रेणी आज सम्पूर्णतया विलुप्त होने के कगार पर पहुँच गया है। धनी कृषक और धनी हो गये, सामान्य ज़मीन के मालिकों ने अपने अंतिम सम्बल (आधार) ज़मीन को जोतदार महाजन के हाथों में देकर खेतीहर--मज़दूरों की संख्या में और वृद्धि कर दी। बचे रहने के मूल अधिकार भी जहाँ वे खो बैठे, वहाँ शहर के मध्यश्रेणी और उच्चश्रेणी साहित्य में अपने--अपने आत्मानुशीलन में व्यस्त थे।.........बांगला साहित्य में लम्बे समय तक विवेकहीन वास्तविकता से विमुख रहने की परपंरा चली है। लेखक दीवाल पर लिखे लेखों को देखने के बावजूद नहीं देख पा रहे थे, जिसके फलस्वरूप समृद्ध पाठकों के मन में भी उन लेखकों के विसर्जन की क्रिया चल पड़ी।....... मनुष्य के प्रति इस तरह के कठोर उदासीनता सम्भवतः भारतवर्ष जैसे विशाल आधा उपनिवेशिक, आधा समाजतांत्रिक विदेशी शोषणों के अभ्यस्त

देश के पक्ष में ही सम्भव है।........मैं वर्तमान समाज व्यवस्था को बदलने के प्रति आकांक्षी हूँ, केवल दलीय राजनीति में विश्वास नहीं कर सकती। स्वाधीनता के 31 वर्ष बाद भी अन्न, जल, जमीन, ऋण, बैठबेगारी इन सभी में से किसी में भी मैं देश के मनुष्यों को मुक्ति पाते नहीं देख सकी। जो यह मुक्ति नहीं दे सके, उसके विरुद्ध लगातार शुभ और सूर्य के समान रंगहीन क्रोध ही मेरी लेखनी का प्रेरणा स्रोत है।"

'जंगल के दावेदार' की कहानी की शुरुआत 9 जून 1900 की सुबह 9 बजे मुंडा विद्रोह के नेता बिरसा की मृत्यु से होती है। मृत्यु जो ब्रिटिश कारागार में होती है। यद्यपि मृत्यु का कारण 'ड़ाइड आफ एशियाटिक कॉलेरा' लिखा जाता हैं तब भी इतिहास की लोककथा और परिपार्श्विक प्रमाण की विभ्रांति को विश्लेषित करके लेखिका उपन्यास में स्पष्ट कर देती हैं कि किस तरह बिना विचारे कई दिनों बंदी बना के रखने एवं सहबंदियों से अलग निर्जन कमरे में रखने के फलस्वरूप बिरसा के भोजन में विषक्रिया को अंजाम दिया जाता है। सिर्फ यही नहीं, न्यायसंगत जमीन की रक्षा की लड़ाई में भाग लेने वाले मुंडा बिरसाइतवारों के विरुद्ध अंग्रेज़ शासकों का सामरिक अभियान, मुंडा लोगों की सरलता, सुयोग को लेकर उनको युद्ध में हराना एवं मुंडा जनपदों में अत्याचार और त्रास संचार के माध्यम से एक सरल, सत्य और परिश्रमी आदिम जनजाति में व्याप्त नवचेतनालब्ध संग्राम को निर्मूल करने का उपनिवेशिक कौशल, बहुक्षेत्रों में सत्तर दशक के भारत तथा पश्चिम बंगाल की वास्तविकता की याद दिलाता है। भारत में 'जंगल के दावेदार' के साम्राज्यवादी प्रशासन काल में ही गणतंत्र के स्तंभ विरोधी दल के प्रतिवाद के मुखर नेता लोगों को रातोंरात जेल में ठूँस दिया गया, अदालत के सुपुर्द करने की संविधानसम्मत रीति को आर्डिनन्स द्वारा अयोग्य कर दिया गया। उसी समय भारतवर्ष के पश्चिम बंगाल नामक अंगराज्य में पुलिस लॉकअप में राजनैतिक बंदियों के ऊपर अमानवीय अत्याचार किया जाता है, जेलखानों में लाठियों से पीटकर बंदियों को मार दिया जाता है। ऐसी स्थितियों में 75-80 वर्ष पूर्व मुंडा जनमानस के जनजागरण के नायक बिरसा मुंडा के जीवन पर आधारित उपन्यास 'जंगल के दावेदार' लिखकर उस समय के गणतंत्र शासक की तमसान्छन्न कानूनी विचारधारा में जो देशकाल—समाज चेतना पर छायी हुई थी तीव्र प्रकाश के आवेदन के संचार में महाश्वेता इस उपन्यास के द्वारा सक्षम हुई थीं।

19.6 सारांश

"जंगल के दावेदार" मुंडा विद्रोह पर आधारित उपन्यास है जो उपन्यास के लेखन से 80 वर्ष पूर्व की घटनाओं पर आधारित है। इसका प्रमुख पात्र बिरसा मुंडा है, अंग्रेजों तथा उनके सहायक जमींदार आदि के विरोध में, उनके शोषण के खिलाफ़ तथा अनेक अधिकारों की माँग करते हुए 26 वर्ष की आयु में प्राण निछावर कर देता है। महाश्वेता देवी के लिए वह विद्रोह इतिहास के पन्नों पर अंकित घटना मात्र नहीं है, बल्कि उसमें चिरंतन सत्य छिपा हुआ है। वे 1895 तथा 1975 की घटनाओं में समानता देखती हैं। उनके लिए अधिकारों की माँग और उस माँग के विरोध में दमन चक्र दोनों ही समय—स्थान की दृष्टि से प्रासंगिक हैं। इसी को वे समय की ऐतिहासिकता कहती हैं।

महाश्वेता देवी ने शुरू में रूमानी कथा लेखन को ही अपनाया था। 'नटी, तिमिर, लगन (1959), प्रेम अंतरंगता' आदि प्रारंभिक उपन्यासों में परंपरागत रूप से प्रेम का रूमानी चित्रण है। बाद में उनका लेखन सोद्देश्य हो जाता है। वे उपन्यास को प्रत्यक्ष रूप से जनजीवन के अन्य परिचय के घोषणा माध्यम के रूप में तब्दील कर देती हैं। इस परिवर्तन के पीछे कई कारण हैं। झाँसी की रानी की कहानी से प्राप्त साहसिक चेतना, वामपंथी विचारों की ओर रुझान, आदिवासी जनजीवन से निकट परिचय और सबसे महत्वपूर्ण कारक के रूप में देश की राजनीतिक – आर्थिक गतिविधियों का प्रत्यक्ष ज्ञान इन सबके कारण उनका साहित्य समसामयिकता के गवाक्ष पर वास्तविकता के ठोस धरातल पर उतर आता है।

'हजार चौरासी माँ' में नक्सल पंथ की पृष्ठभूमि है, 'आपरेशन बसाई टुडू' नक्सलपंथ की राजनीति को वर्णित करता है, 'एम.डब्ल्यू.आर लखिंद' में मज़दूरों और खेतिहरों का चित्रण है। इस कथा यात्रा की परिणति के रूप में है 'जंगल के दावेदार' जिसमें अत्याचार और

शोषण के विरुद्ध मुंडा लोगों के विद्रोह का चित्रण है। इस कथा यात्रा की परिणति के रूप में है 'जंगल के दावेदार' जिसमें अत्याचार और शोषण के विरुद्ध मुंडा लोगों के विद्रोह का चित्रण है। महाश्वेता देवी, वर्तमान में इतिहास की छाया देखती हैं। 1975 की आपातकालीन राजनीति भी अधिकारों की माँग को कुचलने और मौलिक अधिकारों के हनन का परिचायक है। इस दृष्टि से बिरसा उनके लिए धर्म युद्ध का प्रतीक है, उदात्त चरित्र है। वे मात्र कथाकार नहीं, नक्सलवाद आदिवासी तथा मानवता के लिए हमदर्द हैं।

19.7 प्रश्न

निबंधात्मक

1. महाश्वेता देवी के उपन्यास साहित्य की मूलभूत विशेषताओं की चर्चा कीजिए।

टिप्पणियाँ

1. जंगल के दावेदार की प्रासंगिकता का वर्णन कीजिए।
2. महाश्वेता देवी के लेखन में 'समय की ऐतिहासिकता'।